इस्लाम की मांगें मुस्लिम महिलाओं से

एक भाषण के कुछ अंश

मौलाना सै0 अबुल आला मौदूदी साहब

माँओं, बहनों, बेटियों ! इस दुनिया में करोड़ों इन्सान ऐसे पाये जाते हैं, जो अपने को 'मुसलमान' कहते हैं। मगर जिस दुनिया को हम इस्लामी दुनिया के नाम से याद करते हैं, उसका हाल बिल्कुल एक चिड़ियाघर के ऐसा है जहां नाना प्रकार का जानवर भाँति भाँति की बोलियाँ बोलने वाला मौजूद होता है। प्रायः ऐसा ही हाल मुसलमानों की दुनिया का भी है कि उसमें तरह तरह के आदमी इकट्ठा हैं। ऐसे भी जिन्हें ईश्वर के अस्तित्व में शुब्हा है, ऐसे भी जिनको 'वह्य और पैग़म्बरी' में शंका है, ऐसे भी जो परलोक का इनकार करते हैं और यह बात नहीं मानते कि मृत्योपरान्त खुदा की अदालत में कभी इस जीवन का हिसाब देना है। इनमें वह भी हैं जो भलाई और बुराई की उस पहचान से इन्कार करते हैं जिसकी सीख इस्लाम ने दी है। वह भी जिनकी निगाह में हस्लाम की सिखाई जीवन पद्धति दुरूस्त नहीं है। यह सब कुछ करने के बावजूद वह अपने आप को 'मुसलमान' कहते हैं और वह सभी अधिकार प्राप्त करना चाहते हैं जो मुसलमानों की सोसाइटी में एक मुसलमान ही को हासिल हो सकते हैं। इस बटोर में बहुत थोड़े लोग ऐसे पाये जाते हैं जो वास्तव में इस अर्थ में मुसलमान है जिस अर्थ में इस्लाम किसी को मुसलमान कहता है।

अचैतन्य मुसलमानः– आख़िर यह परिस्थिति क्यों हैं। इसका कारण इसके सिवा कुछ नहीं हैं कि हमारा मुसलमान जगत अधिकतर वंशीय मुसलमानों पर सम्मिलित है। जो बस इस कारण मुसलमान हैं कि उसके बाप दादा' मुसलमान थे। आप अगर गम्भीरता से सोचें तो यह तथ्य आप पर स्पष्ट हो जायेगा कि इन्सान को जन्म द्वारा वर्ण मिल सकता है, राष्ट्रीयता मिल सकती है परन्तु किसी को मात्र जन्म द्वारा 'इस्लाम' नहीं मिल सकता। दीन तो केवल इसी तरह मिल सकता है कि आदमी जानबूझ के उसे पसन्द करे और अपने इरादे और अपनी इच्छा से उसको ग्रहण करे। यही कारण है कि हममें जो लोग वंशीय मुसलमान हैं और मात्र–बाप दादा के घर की बदौलत इस्लाम से निस्बत मिली है, उनके पास मुसलमानों के नाम तो हैं लेकिन वह गुण उनमें नदारद हैं जिनका नाम इस्लाम है। उनके सामने वह जीवन पद्धति है ही नहीं जिसका नाम इस्लाम है। उनके सामने वह जीवन पद्धति है ही नहीं जो इस्लाम ने उनके लिए सुझाई है। उन्होंने न कभी उसे जानने की कोशिश की है न कभी उसे अपने लिये पसन्द किया है और न उन पर चलने का इरादा किया है। हालांकि इस्लाम की जो वास्तविकता हज़रत पैग़म्बर (अ0) ने बताई है वह यह है, ''ईमान का मज़ा चखा उस शख़्स ने जो इस पर राज़ी हुआ कि अल्लाह ही उसका पालनकर्ता और हज़रत मोहम्मद उसके पथ प्रदर्शक हों और इस्लाम ही उस की जीवन पद्धति हो।''

इस हदीस की रौशनी में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जिसने सोच समझ के हँसी–खुशी इस्लाम ग्रहण नहीं किया वह इस्लाम के स्वाद तक से अपरिचित है। उसने दीन का स्वाद चखा ही नहीं।

मुसलमान होने का अर्थः–मुसलमान होने के मानी यह हैं कि एक आदमी पूरी चेतना के साथ यह फ़ैसला करे कि दुनिया में ईश्वरत्व पालनकर्ताई और मालिक होने के जितने दावेदार पाये जाते हैं, उन सब में से सिर्फ़ एक, प्रत्येक लोक के पालनकर्ता ही की बन्दिगी उसे करनी है। जिन जिन शक्तियों का यह दावा है कि आदमी उनकी मर्ज़ी का अनुसरण करे, उनके आदेशों का पालन करे और अपनी हस्ती को

उन्हें सौंप दे। इन सब में से सिर्फ अल्लाह ही की हस्ती ऐसी है जिसके आगे आज्ञाकारी से गर्दन नवा देनी है और वही है जिसकी मर्ज़ी उसे ढूंढनी है। फिर मुसलमान होने के माने यह हैं कि हज़रत मोहम्मद (स0) ही को अपनी रहनुमाई के लिये चुन ले और फ़ैसला कर ले कि उसे आप के बताये रास्ते पर चलना है।

जिसने इस तरह से इस्लाम कुबूल किया उसका काम यह है कि अपनी इच्छाओं को अल्लाह की मर्ज़ी, इस्लाम के क़ानून और हज़रत पैग़म्बर(स0) के निर्देशों के अधीन कर दे। फिर उसके लिये मीन–मेख का कोई मौका शेष नहीं रहता। फिर उसे यह कहने का हक़ नहीं रहता कि यद्यपि अल्लाह तआ्ला ने इस मामले में यह हुक्म दिया है और अगरचे इसमें हज़रत पैग़म्बर (स0) ने यह दिशा निर्देश किया है और अगरचे कुरआन इस बारे में यह निर्णय देता है मगर मेरी राय उससे मेल नहीं खाती और मैं तो चलूंगा अपनी ही राय पर। या फिर यह कहे कि दुनिया का चलता हुआ तरीक़ा इसके विपरीत है और मुझे अनुसरण दुनिया के चलन सार का करना है तो यह रवैय्या जिस व्यक्ति का हो तो उसके बारे में समझ लेना चाहिये कि वह ईमान लाया ही नहीं है। यही बात है जिसे हज़रत पैग़म्बर (स0) यूँ बयान फ़रमाते हैं:–**'तुम में से कोई व्यक्ति मोमिन नहीं हो सकता जब तक उसकी मनोकामनायें उस आदेश के अधीन न हो जायें जो मैं लाया था।''**

फिर इस्लामी ज़िन्दगी का अर्थ यह है कि आदमी में ज़िम्मेदारी का एहसास हो, मोमिन की ज़िन्दगी एक ज़िम्मेदार ज़िन्दगी होती है जिस दिल में ईमान मौजूद हो वह कभी इस एहसास से ख़ाली नहीं हो सकता कि उसे अपने जीवन भर के सारे कामों के लिये, विचारों के लिये ख़ुदा के सामने जवाब देही करनी है। उसको मरने के बाद हिसाब देना है कि उसने क्या क्या किया। क्या कहा और क्या सुना। किन तरीकों से जीवन बिताया। किन संलग्नताओं में अपनी कूवतें और क़ाबिलीयतें लगाईं। किन साधनों से कमाया और किन राहों में अपना माल खर्च किया और किन उद्देश्यों के लिये दुनिया में कोशिशें की। मोमिन कभी इस ख़याल में नहीं फंसता कि हमें बस मरके मिट्टी हो जाता है और दुनिया से इसी तरह गुज़र जाता है कि दुनिया के किये धरे का काई परिणाम निकलेगा ही नहीं, वह पुख्ता यक़ीन रखता है कि इस जीवन के बाद फिर एक जीवन है जिसमें ख़ुदा के सामने उपस्थित होके अपने एक एक काम,एक एक गति और एक एक क्षण का हिसाब देना है। इस चीज़ को हुज़ूर पैग़म्बर (स0) ने इन शब्दों में बताया है:– **''सावधान ! तुममें से प्रत्येक शासक है और तुममें से प्रत्येक से उसके शासितों के बारे में पूछताछ होगी।''**

शासित (रईयत) से अभिप्राय वह सब कुछ है जो आदमी के चार्ज में होता है। चाहे वह बाल–बच्चे हों या नौकर, चाहे अधीनस्थ कार्यकर्ता हों या जानवर और जीवन सम्बन्धी सामान। जिस चीज़ पर भी किसी इन्सान का हुक्म चलता है और जो कोई भी उसके अधीन हो वही उसकी रईयत (शासित) है। इन अर्थों में दुनिया में कोई व्यक्ति भी शासित नहीं है। हर एक किसी न किसी परिधि में शासक की हैसीयत रखता है। औरत घर की शासक है, मर्द बालबच्चों का शासक है अधिकारी अधीनस्थों का शासक है, सत्ताधारी या नरेश पूरी आबादी का शासक है। बहरहाल हर इन्सान किसी न किसी तरह का शासक अवश्य है, और कोई न कोई उसके चार्ज में अवश्य है। इन्हीं शासितों के सम्बन्ध में पैग़म्बर (स0) सचेत करते हैं कि :– **''सावधान रहो ! तुम्हें अपने ख़ुदा के सामने जवाबदेही करनी होगी कि तुमने अपने शासितों पर अधिकारों का प्रयोग किस प्रकार किया।''**

यह अक़ीदा और विश्वास मुसलमान की ज़िन्दगी को एक ज़िम्मेदाराना ज़िन्दगी बताता

है। मुसलमान कभी इस ढंग की ज़िन्दगी बसर नहीं कर सकता कि वह जो चाहे खाये, जो चाहे पहने, जिन कामों में चाहे, अपनी शक्ति और अपना समय लगाता रहे, जिधर मनोकामनायें ले जायें उधर आज़ादी से बढ़ता चला जाये। वह कोई छुट्टा जानवर नहीं होता कि जिस खेत में चाहे घुस जाये, जहाँ हरा चारा दिखे मुह मार दे और जिस रास्ते की ओर मुँह उठ जाय उसी पर दौड़ने लगे।''

मुसलमान की ज़िन्दगी का शुद्ध उदाहरण वह है जो हज़रत पैग़म्बर (स0) ने इस हदीस में बताया है :– ''**मुसलमान और ईमान का उदाहरण ऐसा है जैसे खूंटे पर बँधा घोड़ा होता है कि चाहे कितने ही चक्कर लगाये और उछल कूद दिखाये हर हाल में उसके गले कि रस्सी उसे विवश कर देती है कि वह एक ख़ास हद पर पहुंच के अपने खूँटे की ओर पलट जाये।''**

मुसलमान जब ईमान और आज्ञाकारिता के खूँटे से बंधा है तो रस्सी कितनी ही लम्बी क्यों न हो लेकिन वह घूम फिरकर एक ख़ास दायरे के अन्दर ही रूकता है उसकी हदों से बाहर नहीं जा सकता। वह अपनी सारी कूव्वतें और कोशिशें उसी सीमा के अन्दर लगाता है जो खुदा और रसूल (स0) ने उसके लिये नियत कर दी है। उसकी सारी दिलचस्पियाँ, सारे मनोरंजन, सारी सक्रियता और सभी गतिविधियाँ नियत सीमा के भीतर ही सीमित रहेंगी। इन हदों से बाहर जाने का साहस नहीं कर सकता।

हम क्या चाहते हैं ? इस्लाम की इस संक्षिप्त व्याख्या (मुख़तसर तशरीह) के बाद अब मैं अर्ज़ करूंगा कि हम इस्लाम धर्म के सेवक और कार्यकर्ता क्या चाहते हैं ?

हमारा आवाहन सब लोगों के लिये यह है कि वह इस्लाम को जिसका यथार्थ यह है भली भाँति जांच के परख के यह निर्णय करें कि वह इसे अपने जीवन धर्म की भांति स्वीकारते हैं या नहीं। जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूँ इस्लाम जन्म से प्राप्त नहीं होता, वर्ण और गोत्र से नहीं मिलता अतः आवश्यक है कि यह सवाल आपके सामने रखा जाय और आपसे साफ़–साफ़ पूछा जाय कि आप सचमुच हंसी–खुशी इसे स्वीकार करते है या नहीं। आप उसके द्वारा लगायी गयी पाबन्दियों को सहन करने पर राज़ी हैं या नहीं ? आपको ईमान के खूँटे और आज्ञाकरी रस्सी से बंध जाना स्वीकार है या नहीं ? अगर किसी को यह धर्म पसन्द न हो और इस्लामी सिद्धान्तों और सीमाओं के अन्दर रहना गवारा न हो तो उसे पूरा अधिकार है कि वह इसे छोड़ दे। बहरहाल यह धोखा और मसख़रापन अब ख़त्म हो जाना चाहिये जो आजकल लोगों ने अपना रखा है कि इस्लाम 'पसन्द' भी नहीं है उसके अनुसरण पर राज़ी भी नहीं है, विचार और व्यवहार में उसे छोड़के अन्य तरीके अपना चुके हैं मगर आग्रह है कि हम मुसलमान है और मुसलमान कहे जाने पर आग्रह ही नहीं करते बल्कि इस्लाम के ध्वजावाहक और उसकी ओर से धर्म व्यवस्थापक (मुफ़्ती) भी बने फिरते हैं।

इसी तरह यह चलन भी खत्म हो जाना चाहिए कि इस्लाम की जो चीज़ें अपने हित और उद्देश्य के अनुरूप दिखें वह तो स्वीकार कर ली जायें और जो चीज़ें मनोंकाक्षाओं के अनुरूप न हों उन्हें रद्द कर दिया जाये। यह तो ''क्या तुम किताब के कुछ हिस्सों को मानते हो और कुछ का इन्कार करते हो'' को चरितार्थ करता है जिसका गिला हज़रत पैग़म्बर (स0) की ओर से यहूदियों से किया गया था कि ईश्वरीय ग्रन्थ से अपनी पसन्द की चीज़ें तो ले लेते हैं। और जो पसन्द न हो उसे रद्द कर देते हैं। यह इन्द्रिया पूजन और आकांक्षाओं की दास्तान का जारी सिक्का ईमान के नाम से नहीं चल सकता। हम प्रत्येक व्यक्ति के सामने यह प्रश्न रखते हैं और इसका दो टूक जवाब चाहते हैं इस्लाम तुम्हें अपनी जीवन पद्धति की हैसीयत से पसन्द है या नहीं ? पसन्द नहीं हैं तो कृप्या साफ़ इनकार

करो और पन्थ के परिक्षेत्र से बाहर हो जाओ और अगर पसन्द है और सचमुच तुम मुसलमान बनना चाहते हो तो सच्चे मन से उसे ग्रहण करो। इस्लाम के एक अंश या कुछ अंशों को नहीं बल्कि पूरे इस्लाम को लो। सीधी तरह आज्ञाकारिता का चलन इख़्तियार करो और इस्लाम को अपना दीन मान लेने के बाद फिर स्वतन्त्रता का दवा मत करो। इस्लाम आपकी इस आज़ादी को आपका हक़ नहीं मानता।

हम औरतों से निवेदन करते हैं कि वह अपने व्यक्तित्व को मर्दों के व्यक्तित्व में गुम न कर दें। अपने दीन को मर्दों के हवाले न करें वह मर्दों का दुमछल्ला नहीं हैं। उनकी अपनी एक अलग और अटल हस्ती है। औरतों को भी मर्दों ही की तरह खुदा के सामने पेश होना है। अपने किये धरे का स्वतः हिसाब देना है। क़यामत के दिन प्रत्येक औरत अपनी ही कब्र से उठेगी। अपने बाप, पति, भाई (बेटे) की कब्र से नहीं उठेगी। अपने कार्यों का हिसाब देते समय वह यह कहकर न छूटेगी कि मेरा धर्म मेरे मर्दों से पूछों। अपनी जीवन पद्धति की वह खुद ज़िम्मेदार है और उसे खुदा के सामने इस बात का जवाब देना है कि वह जिस रास्ते पर चल रही है क्या सोच कर चलती है। अतः हम औरतों का सवाल मर्दों के सामने नहीं स्वतः औरतों के सामने प्रस्तुत करते हैं और उनसे कहते हैं कि अपने जीवन मार्ग का फ़ैसला तुम खुद करो और इस बात की परवा किये बग़ैर करो कि तुम्हारे मर्दों का फ़ैसला क्या है ? इस्लाम तुम्हें अपने दीन की हैसीयत से पसन्द है या नहीं ? उसके सिद्धान्त, उसकी हदें, उसकी लगाई पाबन्दियाँ, उसके द्वारा डाली गयी ज़िम्मेदारियँ, मतलब यह कि सभी चीज़ें देख के निर्णय करो कि वह तुम्हें मान्य हैं या नहीं। अगर इन सब चीज़ों के साथ इस्लाम कुबूल है तो सच्चे मन से उसका अनुसरण करो, अधूरे ढंग से नहीं। पूरे इस्लाम को अपना दीन बनाओ और जान बूझकर उससे विमुख न हो।

यह बात एक मुद्दत से हम कह रहे हैं। अगर आपको हमारे लिटरेचर की कुछ जानकारी हो तो आप भी इस बात को जानती होंगी कि हमने हमेशा अपने साथियों और सहयोगियों से यही कहा है कि आप घर की औरतों मांओं, बहनों, बीवियों, बेटियों में इस्लाम का प्रचार अवश्य करें मगर ख़ुदा के लिये उन्हें अधिकार (क़व्वामीयत) के ज़ोर से अपने पथ की ओर न खींचें। उन्हें सोचने की, राय बनाने की पूरी आज़ादी दें। तब्लीग़ और आवाहन का हक़ बस इतना ही है कि आप इस्लाम के मुतालबे उनके सामने रखें, इसके बाद औरतों को इस बात का फ़ैसला खुद करने की आज़ादी होनी चाहिये कि उन्हें यह मांग स्वीकार है या नहीं।

□□□

(बक़िया पेज न0 7 का......................)

इमाम ने फ़र्माया "आप ग़लत समझ रहे हैं न अबू सलमा आप का शीआ है न अबू मुसिल्म खुरासानी और उस के लशकर वाले आप के शीआ हैं "अब्दुल्लाह ने कहा "नहीं यह लोग मेरे बेटे मोहम्मद को हाकिम बनाना चाहते हैं।" जो इस उम्मत का मंहदी है इमाम (अ0) ने जवाब दिया कि " न आप का बेटा मंहदी–ए–मौऊद है न उसे हुकूमत मिलेगी बलकि अगर आप के बेटे ने तलवार उठायी तो वह क़त्ल कर दिया जायेगा।" अगरचे अब्दुल्लाह इमाम (अ0) से सिन में भी छोटे थे और इमाम उन का लिहाज़ भी करते थे मगर उन्हें यह बात सख़्त नागवार गुज़री और वह नाराज़ होकर पलट गये। इमाम ने उन्हें यह भी बता दिया कि अबू सलमा का क़ासिद पहले इमाम ही के पास आया था।

जब अबू सलमा का क़ासिद अब्दुल्लाह बिन हसन का जवाब लेकर कूफे पहुंचा तो वहाँ अबुल अब्बास सफ़्फ़ाह की बैअत हो चुकी थी।

□□□